समकालीन हिंदी कविता की चुनौतियाँ

जनवादी कविता के दौर से लेकर अब तक वक्त ने काफी करवटें बदली हैं। सामाजिक आर्थिक संबंधों के साथ राजनीतिक परिदृश्य भी बदला है। इसी के साथ नव-पूंजीवाद की जड़ें भी भूमंडलीकरण के साथ गहराई में जमती गई हैं। जिसने मानव मन पर अमिट छाप छोड़ी है। समकालीन हिंदी कविता में यह छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

समकालीनता की अवधारणा काल सापेक्ष है। वक्त के साथ नए मुद्दे पुराने होते जाते हैं और इसके दायरे से बाहर निकलते जाते हैं। इसी के साथ वर्तमान में उभरने वाले नए मुद्दे इसके दायरे में दाखिल भी होते जाते हैं। वर्तमान की चुनौतियां ही समकालीन चुनौतियां कहलाती हैं। समकालीन हिंदी कविता को वर्तमान परिवेश ने कई चुनौतियां दी हैं।

आज बाजारवाद, भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवादी नीतियां वर्तमान पर हावी हैं। राजनीति से लेकर साहित्य तक इनकी जड़े फैली हुई हैं। इस संदर्भ में इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि ये तत्व समकालीन हिंदी कविता पर किस तरह का दबाव डाल रहे हैं।

बाजारवाद समकालीन कविता के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। बाजारवाद माल से पूंजी और पूंजी से माल बनाता है। लाभ कमाने के लिए बाजारवाद अमूल्य चीजों को भी बिकाऊ बनाकर अपने माल की सूची में शामिल कर लेता है। यह देखना जरूरी है कि कविता का नाम बाजार के माल की सूची में कैसे आया। कविता लोगों की स्मृति में जिंदा रहती थी। प्रिंट मीडिया ने स्मृति को गौण बना दिया। अब कविताएं किताबों में जिंदा रहती हैं। इस बात में कोई दो राय नहीं कि किताबों के जरिए व्यक्ति के विचार दूर-दूर तक फैलाए जा सकते हैं। लेकिन हकीकत का एक पहलू यह भी है कि किताब रूपी यह सशक्त माध्यम बाजारवाद का एक मोहरा भी है। इसे पाने से पहले हर साहित्य प्रेमी को अपनी जेब टटोलनी पड़ती है और इसे छपवाने के लिए साहित्यकार को पूंजीवाद की कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दरअसल कविता को जन-जन तक पहुँचाने के मार्ग में बाजारवाद की लाभ कमाने की प्रवृत्ति रोढ़े अटकाती है। बाजारवाद की इसी प्रवृति ने कविता को आभिजात्य वर्ग की वस्तु बना दिया। इतना ही नहीं इस प्रवृत्ति ने कुछ कवियों पर हावी होकर उन्हें बाजार में जगह पा लेने के लिए सतही संवेदना के सहारे कविताएं लिखने की राह भी दिखाई। इसके चलते काव्य जगत में छद्म संवेदना का प्रसार हुआ। बाजारवाद के कारण आज अधिकतर कवियों के विचार और लेखनी के बीच एक खाई बन गई है। इसे हम कवियों में दोहरे चरित्र का विकास कह सकते हैं। बाजारवाद के इस पूरे प्रपंच में शब्द एक क्रीड़ा-कंदूक बन कर रह गया है। पर हकीकत का एक पहलू यह भी है कि कविता को अपदस्थ करने का प्रपंच रचने वाले बाजारवाद को चुनौती देने की ताकत भी इसी कविता में है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कविता साहित्य की सबसे ज्यादा अव्यावसायिक विधा है। इसे कहानी, उपन्यास या नाटक की तरह धड़ल्ले से बेचा नहीं जा सकता। कविता में संवेदना सर्वाधिक सघन रूप में होती है, इसलिए बाजारवाद के लिए इसे भेदना और माल बनाकर बेचना मुश्किल हो जाता है। शायद इसलिए अपने एकाधिक हथकंडों के बावजूद बाजारवाद कुछ ही कवियों को अपने अनुकूल बना पाया है। कवियों के एक बहुत बड़े वर्ग को यह अब तक पूरी तरह से अपनी चपेट में नहीं ले पाया। समकालीन कवियों का यह वर्ग संवेदनाओं को बचाने की कोशिश में लगा है और बाजारवाद को बार-बार अलग-अलग ढंग से दुतकारता है। एकांत श्रीवास्तव इसी वर्ग के कवि हैं। अपने काव्य संकलन 'मिट्टी से कहूंगा धन्यवाद' की 'दुनिया के हाट में' शीर्षक कविता में एकांत श्रीवास्तव का बाजार से टकराने का अंदाज देखा जा सकता है, वे कहते हैं-

''मैं जमीन नहीं बेचता
बेचता हूँ आँखे

जल और स्वप्न से भीगी
अपनी दो अदद आंखें।''

संवेदनाओं और सपनों के लिए चुनौती साबित होने वाले बाजारवाद को आंसू और सपनों से भीगी आंखे ही चुनौती दे सकती हैं।

बाजारवाद की यह खूबी है कि वह कविता को आभिजात्य वर्ग की वस्तु बनाने का प्रयास करता है और इस क्रम में वह लय और प्रवाह से कविता का संबंध तोड़कर उसे जन साधारण की स्मृति में जमने से रोकता है। समकालीन कविता बाजारवाद के इस प्रकोप से खुद को पूरी तरह से बचा नहीं पाई। बाजारवाद के इस प्रभाव से मुक्त होने के लिए समकालीन कविता की शिल्पगत एकरसता की जमीन को तोड़ना होगा और लय और प्रवाह से अपना संबंध जोड़ना होगा। आज के युग की यह मांग है कि युगानुसार कविता का अपना समाजशास्त्र विकसित किया जाए और साहित्य एवं समाज के संबंध की युगानुरूप व्याख्या की जाए। जिसके आधार पर कवि अपना जीवन दर्शन विकसित कर सके तथा कविता के जरिये पाठक को भी एक नया जीवन दर्शन दे सके। तभी समकालीन कविता बाजारवाद के टक्कर में खड़ी हो सकेगी।

आज भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के जरिए विश्व को एक गाँव का रूप देने की बात की जाती है। असल में इन नीतियों के पीछे विकसित राष्ट्रों की पूंजी बटोरने की मानसिकता कार्य कर रही है। इन नीतियों के चलते भारत में नब्बे फीसदी लोग बेरोजगार बन गए हैं तो दस फीसदी लोग लालची उपभोक्ता। बेरोजगारों की संवेदना जहाँ परिस्थिति की मार से दबती जा रही है, वहीं लालची उपभोक्ताओं ने संवेदनाओं को खुद मार डाला है। सवाल यह है कि इस भूमंडलीकरण की चक्की में पिसे तमाम निम्नवर्गीय लोगों के पक्ष में कौन खड़ा होगा? निश्चित रूप से यह बीड़ा समकालीन कविता को उठाना होगा। समकालीन कवि भूमंडलीकरण की इस नीति से बखूबी टकरा रहे हैं। उदाहरण स्वरूप प्रफुल्ल कोलख्यान के काव्य संग्रह 'मंजी हुई शर्म का जनतंत्र' की 'भूमंडलीकरण' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

''हेड मास्टर की मेज़ पर
रखा है
एक बड़ा सा ग्लोब
ग्लोब नाचता है
अँगुलियों के इशारे पर

x x x

ग्लोब के नाचने से
मौसम कतई नहीं बदलता है
इस बात को कौन नहीं जानता है ?

भूमंडलीकरण का दौर निजीकरण का भी दौर है। कविता लिखते वक्त समकालीन कवि अगर निजी अनुभवों में उलझकर रह गया तो समकालीन हिंदी कविता समाजोपयोगी विचारों को पाठकों तक संप्रेषित नहीं कर पाएगी। हर कवि में एक पाठक भी होता है। समकालीन कवियों को साधारण पाठक के मन को छूना होगा। इस कोशिश में कविता की भाषा टूटकर सहज होगी और कवि का संवेदना से उत्पन्न ज्ञान कविता में ढलकर पाठकों की संवेदना को उद्वेलित करेगा।

वर्तमान समाज भूमंडलीकरण के चलते एक कठिन दौर से गुजर रहा है। वैश्वीकरण ने एक ओर लोकसंस्कृति को अपदस्थ किया है तो दूसरी ओर जातीय पहचान के सवाल को गौण बना दिया है। समकालीन कविता को भूमंडलीकरण से लड़ने के लिए लोक संस्कृति और जातीय पहचान को विशेष महत्व देना होगा। जहाँ तक लोक संस्कृति से जुड़ाव का सवाल है, मदन कश्यप, निलय उपाध्याय, ज्ञानेन्द्रपति, अरुण कमल, उदयप्रकाश

जैसे समकालीन कवि इससे जुड़े हुए दिखाई देते हैं उदाहरण स्वरूप मदन कश्यप के 'नीम रोशनी में' नामक काव्य संग्रह की 'कुआँ' शीर्षक कविता की यह पंक्तियां देखिए,

"पृथ्वी गर्भ में गहरे धंसी अपनी जमुअट पर/ दृढ़ता के साथ खड़ा रहता है कुआँ/ छाती में पोरसा भर जामुनी जल समेटे/ थोड़े से जतन और जुगत से कोई भी पा सकता है उसका पानी/ अन्यथा जगत पर सिर पटक-पटक कर मर जाओ/ तब भी प्यास बुझाने के लिए/ अपना जल ऊपर नहीं उछालता कुआँ।"

युग की यह मांग है कि समकालीन कवि लोक संस्कृति से न सिर्फ जुड़े बल्कि उसे एक हथियार बनाकर भूमंडलीकरण के खिलाफ इस्तेमाल करे। लेकिन यहाँ एक बात पर गौर करना चाहिए कि लोक संस्कृति से जुड़ाव क्षेत्रीयतावाद को बढ़ावा दे सकता है। इस खतरे से बचने के लिए यह जरूरी है कि समकालीन कवि लोक संस्कृति से जुड़ने के साथ-साथ जातीय पहचान को भी अनिवार्य रूप से महत्व दें।

समकालीन कविता की चुनौतियों पर विचार करते हुए समाज में मौजूद सामंतवादी तथा पुनरुत्थानवादी विचारधाराओं के प्रभाव को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। सवाल यह है कि यह विचारधाराएं समकालीन कवियों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? दरअसल मध्यवर्गीय कवि में मौजूद सामंती अहं उसे डिक्लास होने से रोकता है। सामंती अहं एक ओर कविता को जनवादी रुख अपनाने से रोकता है तो दूसरी ओर उसमें भाषागत सहजता नहीं आने देता। जहाँ तक पुनरुत्थानवाद का सवाल है यह धार्मिक तथा सांस्कृतिक कट्टरता का रूप ग्रहण कर व्यक्ति की वेशभूषा से लेकर संवेदना को निशाना बनाता है। इनसे लड़ने के लिए समकालीन कविता को धर्म और संस्कृति की बनी बनाई धारणाओं पर चोट करना होगा और पाठकों को धर्म और ईश्वर के प्रति तर्कपूर्ण रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करना होगा। इसके लिए कबीर जैसी दो टूक भाषा की जरूरत है। ऐसी भाषा जो प्रतिगामी शक्तियों पर तीखा प्रहार करे।

इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम खासकर टेलीविजन के आकर्षक कार्यक्रम भी समकालीन कविता के लिए चुनौती हैं। समकालीन कविता के लिए दृश्य-श्रव्य माध्यम के चटपटे मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों के आकर्षण के सामने टिक पाना मुश्किल है। यह बात गौर करने लायक है कि ऐसे कार्यक्रम दर्शकों को कुछ पल के लिए तनाव से मुक्ति दिलाते हैं। इसलिए व्यस्त कामकाजी जिंदगी से तंग आकर लोग इन कार्यक्रमों के जरिए अपनी बुद्धि को कुछ पल के लिए विश्राम करने का अवसर देते हैं। लेकिन इस बात को नजरंदाज नहीं किया जा सकता कि टेलीविजन के चटपटे मनोरंजनात्मक कार्यक्रम दर्शकों की सोच को कुछ पल के लिए खरीद लेते हैं। इन कार्यक्रमों का आनंद उठाते वक्त दर्शको की सोचने-विचारने की शक्ति स्थगित रहती है। वे बिना सोचे समझे इन कार्यक्रमों द्वारा पेश किए जा रहे मूल्यों को ग्रहण करते जाते हैं। ऐसे में दर्शकों की विचारशक्ति को जिंदा रखने का बीड़ा समकालीन कविता को उठाना होगा। इसके लिए समकालीन कविता को एक ओर बिम्बात्मक तथा कुछ हद तक आख्यानपरक होना होगा ताकि वह पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर सके, तो दूसरी ओर उसे लय से जुड़ना होगा, ताकि पाठक उसमें सहजता से रम सकें। इससे कविता अधिक से अधिक समाज सापेक्ष बनेगी। समकालीन कविता के ऐसे शिल्प से आवृत्ति कला को बढ़ावा मिलेगा और आवृत्ति कला का विकास कविता को समाज में लंबे समय तक जिंदा रखने के साथ-साथ पाठकों में कविता के प्रति रुचि पैदा करने में भी मददगार साबित होगा। जहाँ तक समकालीन कविता का सवाल है इसमें लयात्मकता का भले ही अभाव हो पर बिंबात्मकता का अभाव नहीं है। मसलन प्रेमरंजन अनिमेष की 'पहचान' कविता की यह पंक्तियां देखी जा सकती हैं,

"अपने सिर के बराबर
हिलाकर नारियल को पहचानता हूँ
उसका पानी बजाकर उसके रस की कुलांचे पोरों
से महसूस कर

नींबू को
लौकी को पहचानता हूँ
हल्के नाखून गाड़कर
एक पहचान
ले जाती है ऊँगली पकड़कर
दूसरे तक।''

इन पंक्तियों में उभरने वाला बिंब पाठकों को आकर्षित करता है।

हिंदी कविता के क्षेत्र में कुछ दशकों तक क्षणवाद, व्यक्तिवाद, लघुमानव की अवधारणा, इतिहास और सपनों के अंत की बातों ने अपना प्रभुत्व जमाए रखा। इन भावों ने हिंदी कविता को काफी हद तक निराशा के भंवर में खींचा है। जहाँ तक समकालीन कविता के कवियों का सवाल है इन्होंने क्षणवाद, व्यक्तिवाद, लघुमानव की अवधारणा, इतिहास और सपनों के अंत की बातों पर करारी चोट की है। साहित्य में अस्तित्ववाद से प्रभावित प्रतिगामी सोच पर समकालीन कवियों की संकल्पधर्मा शक्ति ही हावी रही है। अस्तित्ववाद में जहाँ इतिहास के अंत की बात की जाती है वहीं कुमार अंबुज अपनी 'धूल' शीर्षक कविता में कहते हैं,

''इतिहास की खिड़की से लगातार
धूल गिर कर रही है

x x x

धूल भरे लोगों के लिए
बहुत परिचित है धूल का संसार
वहीं नष्ट होने से बचाते हैं
वे अपने बीज
और धूल को उपजाऊ मिट्टी में बदलते हुए, मिट्टी से सने हुए वे
इस कठोर सदी में हँसते हैं।''

इन पंक्तियों में एक समकालीन कवि का इतिहास के प्रति विश्वास झलकता है। इतना ही नहीं समकालीन कवि बोधिसत्व जिनमें गहरा दुखबोध पाया जाता है वे भी आखिरकार 'ऐसा ही होता है' कविता में यह कहते हुए दिखाई देते हैं,

''अक्सर ऐसा ही होता है
कि मरते-मरते बच जाते हैं हम

x x x x

नहीं रही किसी की जरूरत
न मित्रता, न राज्य, न आजादी
न कविता, न बरखा, न खेल

x x x x

पर होता है यही अक्सर
कि हम फसल के बचाव में निकलते हैं
और छोटी सी बात पर मर मिटते हैं।''

कहना न होगा कि समकालीन कवियों की संकल्पधर्मा शक्ति का वजन अस्तित्ववादी विचारधारा से ज्यादा है। प्रफुल्ल कोलख्यान की 'मंजी हुई शर्म का जनतंत्र', कुमार अंबुज की 'अतिक्रमण' जैसी कृतियां इस बात को प्रमाणित करती हैं।

विकृत पूंजीवादी मूल्यों ने सामाजिक हालात को जटिल बना दिया है। समाज को इस जटिलता से मुक्त करने का दायित्व समकालीन कवियों को भी उठाना होगा। यह युग की मांग है कि समकालीन कवि, कविता के जरिए समाज के लिए नए विकल्प खोजें। पर समकालीन कवि को यह बात बराबर ध्यान में रखनी होगी कि इस खोज यात्रा के दौरान वह मिथ्या आशावाद को प्रश्रय न दें। क्योंकि कविता का मिथ्या आशावाद निराशावाद से अधिक भयानक होता है।

समकालीन कवि एवं आलोचक विनोद दास ने अपने 'कठिन समय में कविता' शीर्षक लेख में समकालीन कविता की एक बहुत बड़ी कमजोरी की ओर ध्यान खींचा है। उनके शब्दों में,

''दरअसल पाठ के बाद कविता सीले हुए पटाखों की तरह पाठकों के मन में फुस्स हो जाती है। जिनको दुबारा काम में नहीं लाया जा सकता।''

सवाल यह है कि आखिर ऐसा होने के पीछे क्या वजह है? दरअसल अधिकतर समकालीन कविता के कवि यह भूल जाते हैं कि कविता केवल एक निजी बात नहीं है। बल्कि उसका एक सामाजिक पक्ष भी है। इस लिहाज से पाठक के भाव जगत को आंदोलित कर उनके मन में ढेरों सवाल खड़े करना कविता का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। सवाल तभी खड़े होंगे जब कविता एक निश्चित गति से पाठक में विचारों की शृंखला पैदा करेगी। समकालीन कविता में यह क्षमता पैदा करने के लिए यह आवश्यक है कि कवि चीजों के प्रति तयशुदा दृष्टि अपनाकर कविता न लिखें बल्कि कविता रचते हुए वह चीजों को अलग-अलग कोणों से देखें। तभी कविता में यथार्थ के कई चेहरे उभरेंगे। पाठकों को चेहरों के पीछे का चेहरा दिखाई देगा। आज कविता को पारदर्शी शब्दों की नहीं बल्कि कुरेदने वाले शब्दों की जरूरत है। क्योंकि पारदर्शी शब्दों से समस्या की सघनता का तो पता चलता है, पर ये शब्द मन में खरोंच पैदा नहीं करते। यह युग की मांग है कि कविता पाठक के मन में खरोंच पैदा करे। तभी समकालीन कविता सही अर्थों में प्रतिपक्ष की कविता बन पाएगी।

एक बात गौरतलब है कि एक अच्छी कविता मूर्त भी होती है और अमूर्त भी वह साफ शब्दों में पाठक के सामने सब कुछ खोलकर नहीं रख सकती। क्योंकि कविता अगर ऐसा करेगी तो वह कविता नहीं रह जाएगी। अतः कविता के फार्म का चुनाव समकालीन कवियों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। आज कुछ चीजें एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी होकर समकालीन कवियों के लिए चुनौती साबित हो रही हैं। मसलन टेलीविजन के चटपटे कार्यक्रम बनाम कविता, अमूर्त कविता बनाम पाठक, लोकप्रिय कविता बनाम उच्च्य स्तरीयता या फिर पॉप कल्चर और हाई कल्चर में विरोध के चलते उच्चस्तरीय कविताओं का लोकप्रिय न बन पाना इत्यादि। वर्तमान समय की इन चुनौतियों का सामना करने के लिए यह बहुत जरूरी है कि समकालीन कवि के पास कविता के लिए आकर्षक फार्म होने के साथ-साथ अपना एक विज़न हो और कविता के आकर्षक फार्म में झलकता कवि का विज़न पाठकों को अपनी ओर खींचने के साथ-साथ उन्हें नई राहें भी दिखाए।